जलवायु अनुकूल खेती

-भुवन भास्कर

जलवायु परिवर्तन अब सैद्धांतिक बौद्धिक परिचर्चा से बाहर निकल कर वास्तविकता बन चुका है। साल-दर-साल न सिर्फ भारत में, बल्कि दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों की खबरें आम हो चली हैं। ये दुष्प्रभाव लगभग हर क्षेत्र में मानवता के अस्तित्व पर संकट के रूप में उभरे हैं और कृषि इनमें सबसे प्रमुख है। एक ओर विश्व की जनसंख्या लगातार बढ़ती जा रही है तो दूसरी ओर, जलवायु परिवर्तन के कारण फसलों का उत्पादन और उत्पादकता कम होना एक आम समस्या बन रही है। ऐसे में टिकाऊ खेती के रास्ते ढूंढना ही एकमात्र विकल्प है।

संयुक्त राष्ट्र का आंकलन है कि वर्ष 2050 तक दुनिया की जनसंख्या 900 करोड़ तक पहुँच जाएगी और उसकी खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विश्व के मौजूदा खाद्य उत्पादन में लगभग 70% की बढ़ोतरी करने की आवश्यकता होगी। लेकिन इसी तस्वीर का दूसरा पहलू यह है कि दुनिया भर में कृषि के सामने जलवायु परिवर्तन की चुनौती हर वर्ष पहले की तुलना में तेजी से बढ़ती जा रही है।

इस चुनौती को कुछ आंकड़ों से समझा जा सकता है। जलवायु परिवर्तन पर अंतर-सरकारी पैनल (IPCC, 2018) की पांचवीं आंकलन रिपोर्ट (AR5) के मुताबिक दुनिया के मौसम विज्ञानियों का अनुमान है कि वर्ष 2100 तक धरती के औसत तापमान में 2.5-5.8 डिग्री सेंटीग्रेड तक की बढ़ोतरी हो सकती है, जबकि तापमान में सिर्फ एक डिग्री सेंटीग्रेड वृद्धि के साथ मक्के की उत्पादकता 7.4%, गेहूँ की उत्पादकता 6%, चावल की उत्पादकता 6.2% और सोयाबीन की उत्पादकता 3.1% कम हो जाती है। यदि तापमान में यह वृद्धि 2 डिग्री सेंटीग्रेड तक हो जाए तो अनाज के उत्पादन में 20-40% तक कमी आ जाती है विशेष तौर पर एशिया और अफ्रीका महाद्वीप में। चावल, गेहूँ,

लेखक भारतीय अर्थव्यवस्था एवं कृषि से जुड़े समकालीन विषयों के जानकार हैं। ई-मेल : bhaskarbhuwan@gmail.com

क्या है जलवायु अनुकूल खेती

विश्व बैंक के अनुसार "क्लाइमेट स्मार्ट एग्रीकल्चर (सीएमए) भू-परिदृश्य के प्रबंधन का ऐसा समेकित समाधान है, जिसमें खाद्य सुरक्षा और जलवायु परिवर्तन की बढ़ती दर के अंतर्संबंधों को ठीक किया जाए।" विश्व बैंक ने 'भू-परिदृश्य' के तहत खेती की ज़मीन के अलावा पशुपालन, जंगल और मछली पालन को भी शामिल किया है। सीएसए के तहत एक साथ तीन परिणामों को लक्ष्य कर काम किया जाता है – उत्पादन में बढ़ोतरी, बदलते वातावरण को झेलने लायक फसलों का विकास और ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी।

सोयाबीन, मक्का, कपास और टमाटर जैसी फसलें वायुमंडल के तापमान में वृद्धि के प्रति अत्यंत संवेदनशील हैं। खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) के आंकड़ों के मुताबिक दुनिया भर में प्रमुख खाद्य फसलों के उत्पादन में बढ़ोतरी की दर लगातार कम हो रही है। स्पष्ट है कि बढ़ती जनसंख्या और जलवायु परिवर्तन मिलकर खाद्य सुरक्षा को दुनिया के लिए भविष्य की सबसे बड़ी चुनौती के रूप में पेश करने वाले हैं।

जलवायु परिवर्तन की वैश्विक चुनौती

आमतौर पर जब कृषि और जलवायु परिवर्तन की चर्चा होती है तो अक्सर कृषि को पीड़ित पक्ष ही माना जाता है। लेकिन कृषि और जलवायु परिवर्तन का आपसी संबंध दरअसल एक दुश्चक्र में फंसा है। कृषि जलवायु परिवर्तन से जितने खतरे में है, उतनी ही इसके लिए जिम्मेदार भी है। आईपीसीसी (2013) के मुताबिक कृषि, जंगल और भूमि के इस्तेमाल में बदलाव इंसानी गतिविधियों के कारण होने वाले ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में एक चौथाई यानी 25% के जिम्मेदार हैं।

वायुमंडल में मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड की मात्रा का एक बड़ा स्रोत कृषि है। ग्लोबल वार्मिंग में योगदान के अलावा कृषि के वायुमंडल पर और भी कई दुष्प्रभाव हैं। कृषि जंगलों के कटने और भूमि के इस्तेमाल में बदलाव के लिए जिम्मेदार है, जिससे भूमि कार्बन-डाई-ऑक्साइड को सहेजने वाले एक कुदरती बैंक की जगह उसे वायुमंडल में छोड़ने लगती है। ऐसे में विश्व की लगातार बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए दो चरणों में काम करने की आवश्यकता है– पहला, ग्लोबल वार्मिंग के असर से वर्तमान उत्पादन को बचाना और दूसरा, तापमान में बढ़ोतरी के बावजूद कृषि उत्पादन में बढ़ोतरी करना।

इसलिए जब भावी पीढ़ियों के लिए खेती का एक टिकाऊ मॉडल विकसित करने की बात आती है, तो प्रयास न सिर्फ कृषि को जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाव से बचाने का किया जाना चाहिए, बल्कि कृषि के तौर-तरीकों में ऐसे बदलाव किए जाने की भी आवश्यकता है जिससे जलवायु परिवर्तन में इसकी भूमिका कम की जा सके। दूसरे शब्दों में, दुनिया को ऐसी टिकाऊ खेती के लिए जलवायु अनुकूल खेती, जिसे क्लाइमेट स्मार्ट एग्रीकल्चर (सीएसए) भी कहा जाता है, को अपनाना होगा।

नवाचार तकनीकों का इस्तेमाल बढ़ाना ज़रूरी

जलवायु अनुकूल कृषि उत्पादन के लिए नए और इनोवेटिव तौर-तरीकों तथा तकनीकों का इस्तेमाल बढ़ाए जाने की आवश्यकता है। एफएओ की 2011 में प्रकाशित रिपोर्ट में कहा गया कि घटिया बीजों से अच्छी फसल ले पाना असंभव है। इसका मतलब है कि यदि जलवायु परिवर्तन से कम प्रभावित होने वाली फसलों की ओर बढ़ना है तो उसकी शुरुआत सही तरह के बीजों के विकास से करनी होगी। बीजों के साथ कृषि कार्य में प्रयोग होने वाली तकनीकों के स्मार्ट मैनेजमेंट पर भी काम किए जाने की ज़रूरत है। ये तकनीकें न सिर्फ कम उत्पादन की समस्या पर केंद्रित होनी चाहिए, बल्कि कृषि से उत्सर्जन को कम करने में भी सहायक होनी चाहिए। एफएओ ने इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए बाकायदा एक व्यवस्था का निर्माण किया है जो जलवायु अनुकूल खेती के लिए देशों द्वारा अपनायी जानी चाहिए।

जो बीज जलवायु परिवर्तन के भीषण परिणामों को झेलने के लिए विकसित किए जा रहे हैं, उनके लिए ज़रूरी है कि वे कम से कम पानी, खाद, कीटनाशकों और अन्य इनपुट के साथ अच्छा उत्पादन दे सकें। सूखा, बाढ़, बहुत ज़्यादा या कम तापमान और खारापन इत्यादि ग्लोबल वार्मिंग के कुछ सबसे सामान्य लक्षण हैं। लेकिन इनके अलावा, कीटों के हमले में वृद्धि, पौधों में और पोलिनेशन के स्तर पर पाले की मार में बढ़ोतरी, फसलों में दाने आने के वक्त उच्च तापमान, अति वृष्टि और मिट्टी का बंजर होना अन्य मुश्किलें हैं जो जलवायु परिवर्तन के साथ बढ़कर कृषि उत्पादन पर सीधे असर डालती हैं।

इन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ही एफएओ ने जलवायु अनुकूल खेती की रणनीति को प्रभावी तरीके से क्रियान्वित करने के लिए कुछ खास प्रक्रियाओं के पालन की सिफारिश की है-

बीज विकास कार्यक्रम : यह आवश्यक है कि खाद्य और कृषि उत्पादों की सुरक्षा के लिए बीजों में इस तरह आनुवांशिक बदलाव किए जाएं ताकि वे अपने प्राकृतिक माहौल में खेतों के लायक ढल सकें। जीन बैंक तैयार किए जाएं और उनमें जलवायु परिवर्तन प्रतिरोधी बीजों का संरक्षण किया जाए। यह बहुत आवश्यक है कि बीजों के विकास के किसी भी कार्यक्रम में किसानों की भागीदारी सुनिश्चित की जाए, क्योंकि जब तक किसान का उस पर पूरा भरोसा नहीं होगा, उसे व्यावहारिक तौर पर खेतों में इस्तेमाल नहीं किया जा सकेगा। इसलिए ऐसे बीजों के विकास में किसानों की आजीविका को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

जैव विविधता प्रबंधन : लगभग सभी प्रमुख फसलें, जैसे- मक्का, धान, गेहूँ इत्यादि प्रायः मोनोकल्चर सिस्टम में उगाए जाते हैं, जिसमें बहुत ज़्यादा कीटनाशकों और खरपतवारनाशकों की ज़रूरत होती है लेकिन 2006 में प्रकाशित एक शोधपत्र में कार्ल फोक ने यह प्रमाणित किया कि ज़्यादा विविधता वाली फसलों के साथ बेहतर रोग-प्रतिरोधी क्षमता, आर्थिक स्थिरता और मुनाफा हासिल किया जा सकता है। इसलिए किसानों में इसे लेकर जागरूकता पैदा करने की ज़रूरत है।

एकीकृत कीट प्रबंधन (आईपीएम) : जलवायु परिवर्तन के साथ ही फसलों पर कीटों, बीमारियों और अवांछित खरपतवारों का खतरा बढ़ता जाएगा। इसे नियंत्रित करने के लिए तमाम मौजूदा कीट प्रबंधन तकनीकों को एकीकृत करने की आवश्यकता है। आईपीएम के अंतर्गत कीटों की जनसंख्या को बढ़ने से रोकने, मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण को कम-से-कम प्रभावित करने और कृषि पारिस्थितिकी तंत्र पर न्यूनतम दुष्प्रभाव पैदा किए बिना ऐसी कीट प्रबंधन टेक्नोलॉजी को विकसित किया जाता है, जो किसानों के लिए आर्थिक तौर पर भी वहन करने योग्य हो।

जल उपयोग एवं प्रबंधन में सुधार : कृषिगत सिंचाई के लिए पानी की उपलब्धता पहले ही एक बड़ी समस्या के रूप में उभरने लगी है। जलवायु परिवर्तन के बढ़ते परिमाण के साथ ही यह समस्या भी बढ़ती जानी है। वर्षा की मात्रा और आवृत्ति में हो रहे अनिश्चित बदलाव, जलस्रोतों के सूखने और भूजल के समाप्त होने के साथ ही आने वाले वर्षों में वर्षा-सिंचित और सिंचाई के साधनों से युक्त– दोनों ही तरह की खेती के लिए मुश्किलें बढ़ने वाली हैं। इसलिए टिकाऊ खेती के लिए जल संसाधनों का सही प्रबंधन शीर्ष प्राथमिकता में है। बेहतर जल प्रबंधन के लिए मिट्टी और पानी को बचाने के उपायों पर काम करना होगा। सिंचाई के पारंपरिक साधनों की जगह आधुनिक तकनीक के इस्तेमाल को बढ़ावा देकर यह काम किया जा सकता है।

मिट्टी और भूमि प्रबंधन

जलवायु परिवर्तन के साथ पानी का खारापन बढ़ेगा और वर्षा की अनियमितता। इससे वायुमंडल में नमी का अनुपात भी असंतुलित होगा। इससे बहुत कम नमी वाले इलाकों की मात्रा बढ़ेगी और ज़मीन तेज़ी से बंजर भी होगी। ऐसी ज़मीन को खेती के काम में लाने के लिए ड्राई लैंड फार्मिंग तकनीक बहुत कारगर है। सबसे खास बात यह है कि इस तकनीक में किसानों को न तो कोई अतिरिक्त खर्च करना होता है, न ही किसी मशीन की ज़रूरत होती है। समय से मिट्टी तैयार करना, गहरी जुताई, पराली की मल्चिंग, ज़मीन की लेवलिंग, स्लोपिंग और मेड़ बांधने जैसे पारंपरिक तरीकों से ड्राई लैंड फार्मिंग में सफलता हासिल की जा सकती है। अनाज, मोटे अनाज, तिलहन, दलहन और कपास जैसी फसलों के लिए भी यह तकनीक अच्छे नतीजे देती है। मौजूदा समय में भी भारत में 80% मक्का, 90% बाजरा, लगभग 95% दालें और 75% तिलहन ड्राई लैंड में खेती से आते हैं।

भारत में जलवायु अनुकूल कृषि

लोकसभा की वेबसाइट पर मौजूद एक संदर्भ नोट के मुताबिक भारत में 2010 से 2039 के बीच जलवायु परिवर्तन के कारण प्रमुख फसलों की यील्ड 9% तक कम हो सकती है, और यह समय के साथ बढ़ती जाएगी। अलग-अलग जगहों और जलवायु की परिस्थितियों के मुताबिक यह कमी धान के लिए 35%, गेहूं के लिए 20%, ज्वार के लिए 50%, जौ में 13% और मक्के में 60% तक हो सकती है। तापमान में वृद्धि, वर्षा की अनिश्चितता और सिंचाई के पानी में कमी के कारण 2100 तक अधिकतर फसलों की उत्पादकता में 10-40% तक की कमी आने की संभावना है। वर्ष 2018 के भारत सरकार के आर्थिक सर्वेक्षण में यह अनुमान जताया गया कि सिर्फ जलवायु परिवर्तन के कारण देश को साल भर में 9-10 अरब डॉलर का नुकसान हुआ। भविष्य में इस तरह के नुकसान को यथासंभव कम करने के लिए भारत सरकार ने निम्नांकित कदम उठाए हैं।*

जलवायु प्रतिरोधी कृषि पर राष्ट्रीय नवाचार (एनआईसीआरए): यह भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) का नेटवर्क प्रोजेक्ट है, जो 350 करोड़ रुपये के आवंटन के साथ फरवरी 2011 में लॉन्च किया गया था। इस परियोजना का उद्देश्य भारतीय कृषि की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाना है, जिसमें फसलों के अलावा पशुपालन और मछली पालन भी शामिल हैं।

*(स्रोतः संसद का पुस्तकालय और संदर्भ, शोध, दस्तावेजीकरण और सूचना सेवा की संदर्भ टिप्पणियां)

"फसल के उत्पादन और उनकी उत्पादकता को बढ़ाने के लिए खाद नीति में पर्यावरण-अनुकूल बदलाव किए गए हैं। खादों के इस्तेमाल से अनाज उत्पादन में 1.366 करोड़ टन की वृद्धि से 1.148 करोड़ हेक्टेयर जंगल को कृषि भूमि में बदले जाने से रोका जा सका, जिससे वायुमंडल में 2.013 करोड़ टन ग्रीनहाउस गैस कम हुई।"

सतत कृषि के लिए राष्ट्रीय मिशन (एनएमएसए) : सरकार जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्ययोजना (एनएपीसीसी) के माध्यम से जलवायु गतिविधियों के लिए विशेष क्षेत्रों में अलग-अलग राष्ट्रीय मिशन चला कर फ्रेमवर्क तैयार कर रही है। इस मिशन के तहत पर्यावरण अनुकूल तकनीकों, बिजली बचाने वाले सक्षम उपकरणों, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, समेकित खेती इत्यादि पर ज़ोर देकर मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, पानी के इस्तेमाल की उन्नत क्षमताओं, कीटनाशकों के बेहतर इस्तेमाल और फसल बहुलीकरण जैसे उपायों से अलग-अलग क्षेत्रों के लिए वहां की विशेषताओं के मुताबिक एग्रोनॉमिक गतिविधियां विकसित करने पर ध्यान दिया जा रहा है।

जलवायु परिवर्तन के लिए राष्ट्रीय अनुकूलन फंड (एनएएफसीसी) : इस फंड का गठन जलवायु परिवर्तन के प्रति ज़्यादा संवेदनशील राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों को जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलित करने पर आने वाले खर्च की व्यवस्था हेतु किया गया है। वर्ष 2015-16 के दौरान क्रियान्वित यह योजना मुख्य रूप से कृषि सहित कई ऐसे सेक्टरों पर जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों को कम करने के लिए चलाई जा रही ठोस अनुकूलन गतिविधियों की मदद कर रही है। इसके तहत पंजाब, हिमाचल प्रदेश, उड़ीसा, मणिपुर, तमिलनाडु, केरल, मिज़ोरम, छत्तीसगढ़, जम्मू-कश्मीर, मेघालय, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश इत्यादि राज्यों में कई परियोजनाएं चलाई जा रही हैं।

जलवायु अनुकूल गाँव : जलवायु अनुकूल गाँव, जिन्हें क्लाइमेट-स्मार्ट विलेज (सीएसवी) भी कहा जाता है, स्थानीय स्तर पर किसानों को इस योग्य बनाने का एक संस्थागत प्रयास है ताकि वे जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि पर होने वाले दुष्प्रभावों को अपने स्तर से कम से कम कर सकें। सीएसवी को हरियाणा के करनाल और बिहार के वैशाली ज़िलों में प्रयोग के तौर पर शुरू किया गया था। बाद में इन्हें पंजाब, आंध्र प्रदेश और कर्नाटक में भी शुरू किया गया।

परंपरागत कृषि विकास योजना (पीकेवीवाई) : यह एनएमएसए के तहत 2015 में शुरू किए गए मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन का एक विस्तारित आयाम है जिसका उद्देश्य गाँवों के क्लस्टर बना कर उनमें जैविक खेती को बढ़ावा देना है।

बायोटेक किसान : यह वैज्ञानिकों और किसानों की एक साझेदारी योजना है जिसे 2017 में कृषिगत नवाचारों के लिए लॉन्च किया गया था। इस योजना का लक्ष्य वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में होने वाले नवाचार को किसानों से जोड़ना और उन्हें व्यावहारिक धरातल पर लाकर खेती में उपयोग करना है। इसके तहत अब तक देश के सभी 15 कृषि जलवायु क्षेत्रों और आकांक्षी 110 ज़िलों में 146 बायोटेक किसान केंद्र स्थापित किए जा चुके हैं।

एग्रो फॉरेस्टरी पर उप मिशन : खेतों के मेड़ पर पेड़ लगाने के लक्ष्य के साथ यह मिशन 2016-17 में शुरू किया गया था।

राष्ट्रीय लाइवस्टॉक मिशन : इस मिशन की शुरुआत कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने 2014-15 में की थी। इसका उद्देश्य मुख्य रूप से लाइवस्टॉक (दुधारू पशुओं) पर फोकस कर टिकाऊ उपायों द्वारा प्राकृतिक वातावरण का बचाव, जैव-सुरक्षा सुनिश्चित करना, पशु जैव विविधता का संरक्षण करना और किसानों की आजीविका को और समृद्ध करना है।

राष्ट्रीय जल मिशन : जल स्रोतों के संरक्षण और इसकी बर्बादी को न्यूनतम स्तर पर लाने के लिए एक समेकित वॉटर रिसोर्स मैनेजमेंट (आईडब्ल्यूआरएम) तैयार करने के उद्देश्य से एक मिशन की शुरुआत की गई। इसके उद्देश्यों में कृषि क्षेत्र सहित अन्य सेक्टरों में पानी के इस्तेमाल की क्षमता (डब्ल्यूयूई) 20 प्रतिशत बढ़ाना भी शामिल है।

भारत सरकार ने कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को समझने के लिए कई प्रयास शुरू किए हैं। सभी 572 ग्रामीण ज़िलों में कृषि पर जलवायु परिवर्तन के कारण पैदा होने वाले जोखिम के आंकलन के लिए विस्तृत अध्ययन किए गए हैं। आईसीएआर और एनएआरएस ने 650 ज़िलों के लिए ज़िला कृषि आपातकालीन योजनाएं तैयार की हैं, जिन्हें नियमित तौर पर अपडेट किया जा रहा है। पर्यावरण के प्रति ज़्यादा संवेदनशील सभी 151 ज़िलों में एनआईसीआरए परियोजना के तहत एक-एक जलवायु-रोधी (जिन पर जलवायु परिवर्तन का असर न्यूनतम हो) गाँव विकसित किए जा रहे हैं और इन ज़िलों में क्षेत्र-आधारित प्रौद्योगिकी का प्रदर्शन किया गया है।

फसल के उत्पादन और उनकी उत्पादकता को बढ़ाने के लिए खाद नीति में पर्यावरण-अनुकूल बदलाव किए गए हैं। खादों के इस्तेमाल से अनाज उत्पादन में 1.366 करोड़ टन की वृद्धि से 1.148 करोड़ हेक्टेयर जंगल को कृषि भूमि में बदले जाने से रोका जा सका, जिससे वायुमंडल में 2.013 करोड़ टन ग्रीनहाउस गैस कम हुई। यूरिया पर नीम कोटिंग से खादों की लागत कम हुई है, पोषक तत्वों के इस्तेमाल की क्षमता बढ़ी है और ग्रीनहाउस गैस का उत्सर्जन कम हुआ है। साथ ही, देश भर में जैविक खेती और ज़ीरो बजट प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने के गंभीर प्रयास किए जा रहे हैं। एग्रो-फॉरेस्टरी के अंतर्गत क्षेत्र में बढ़ोतरी हुई है और इससे कार्बन स्थिरीकरण में वृद्धि तथा ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी आ रही है। ❑